समाचार एवं विचार सेवा वार्षिक सहयोग राशि 25/–
महाकौशल–संदेश
वर्ष:– 18 पृष्ठ:– 4 अंक :– 43 संपादक :– डॉ. किशन कछवाहा
RNI No. MPHIN/2001/11140

यह सामग्री 'प्रकाशनार्थ' प्रेषित है। कृपया अपने लोकप्रिय पत्र–पत्रिका में प्रकाशित कर Complimentaryकापी प्रेषित करने की अनुकम्पा करें।

विवेकानंद के सच्चे अनुयायी सुभाष

अपने छात्र जीवन से ही स्वामी विवेकानंद से प्रभावित रहे सुभाष चंद्र बोस ने समय – समय पर विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं पर चलने का आग्रह किया था और धर्म और स्वदेश रक्षा का स्वामी जी का सूत्र अपनाया था

– राजेन्द्र चड्ढा

उनकी (विवेकानंद जी) पुस्तकों को दिन – पर – दिन, सप्ताह – पर – सप्ताह और महीने – पर – महीने पढ़ता चला गया। आत्मनो मोक्षार्थ जगत्द्धिताय च यानी अपनी मुक्ति और मानवता की सेवा के लिए।

वे अक्सर कहा करते थे कि उपनिषदों का मूलमंत्र है शक्ति। नचिकेता के समान हमें अपने आप में श्रद्धा रखनी होगी।

मैं उस समय मुश्किल से पद्रंह वर्ष का था, जब स्वामी विवेकानंद ने मेरे जीवन में प्रवेश किया।

स्वामी विवेकानंद अपने चित्रों और अपने उपदेशों के जरिये मुझे एक पूर्ण विकसित व्यक्तित्व लगे।

स्वामी विवेकानंद के द्वारा मैं क्रमशः उनके गुरू रामकृष्ण परमहंस की ओर झुका। विवेकानंद के भाषणों और पत्रों आदि के संग्रह छप चुके थे और सभी के लिए सामान्य रूप से उपलब्ध थे। परंतु स्वामी रामकृष्ण बहुत कम पढ़े – लिखे थे और उनके कथन उस प्रकार उपलब्ध नही थे। उन्होंने जो भी जीवन जिया, उसके स्पष्टीकरण का भार औरों पर छोड़ दिया। फिर भी उनके शिष्यों ने कुछ पुस्तकें और डायरियां प्रकाशित कीं, जो उनसे हुई बातचीत पर आधारित थीं और जिनमें उनके उपदेशों का सार दिया गया था। इन पुस्तकों में चरित्र निर्माण के संबंध ा में सामान्यतः और आध्यात्मिक उत्थान के बारे में विशेषतः व्यावहारिक दिशा – निर्देश दिए गए हैं। रामककृष्ण परमहंस बार –बार इस बात को दोहराते थे कि आत्मानुभूति के लिए त्याग अनिवार्य है और संपूर्ण अहंकार – शून्यता के बिना आध्यात्मिक विकास असंभव है।

शीघ्र ही मैंने अपने मित्रों की एक मंडली बना ली, जिनकी रूचि रामकृष्ण और विवेकानंद में थी। स्कूल में और स्कूल के बाहर जब कभी हमें मौका मिलता, हम इसी विषय पर चर्चा करते। क्रमशः हमने दूर – दूर तक भ्रमण करना आरंभ किया, ताकि हमें मिल – बैठकर और अधिक बातचीत करने का अवसर मिले।

कटक से सुभाष बाबू ने अपनी पत्नी श्रीमती प्रभावती देवी को 8 – 9 पत्र लिखे थे। इन्हीं दिनों वे पत्र पढ़ने का अवसर मिला। एक पत्र में वे लिखते हैं– '' संसार के तुच्छ पदार्थों के लिए हम कितना रोते हैं, किंतु ईश्वर के लिए हम अश्रुपात नहीं करते। हम तो पशुओं से भी अधिक कृतघ्न और पाषाण – हृदय हैं। ''

8 जनवरी, 1913 को अपने मझले भाई के नाम पत्र में उन्होंने लिखा था– '' भारतवर्ष की कैसी दशा थी और अब कैसी हो गई है ? कितना शेचनीय परिवर्तन है। कहां हैं वे परम ज्ञानी, महर्षि, दार्शनिक ? कहां हैं हमारे वे पूर्वज, जिन्होंने ज्ञान की सीमा का स्पर्श कर लिया था ? सब कुछ समाप्त हो गया। अब वेदमंत्रों का उच्चारण नहीं होता। पावन गंगातट पर अब मंत्र नहीं गूजते, परंतु हमें अब भी आशा है कि हमारे हृदय से अंधकार को दूर करने और अनंत ज्योतिशिखा प्रज्जवलित करने के लिए आशादूत अवतरित हो गए हैं। वे हैं– विवेकानंद। वे दिव्य कांति और मर्मवेधी दृष्टि से युक्त हो संन्यासी के वेश में विश्व में हिन्दू धर्म का प्रचार करने के लिए ही आए हैं। अब भारत का भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है। ''

परंतु धर्म और सेवा में अपनी इस रूचि के बावजूद सुभाष बाबू ने अपने अध्ययन में उपेक्षा नहीं दिखाई थी। 1913 में मैट्रिकुलेशन का परीक्षाफल निकलने पर पता चला कि कोलकाता विश्वविद्यालय के अंतर्गत बैठने वाले दस हजार विद्यार्थियों में कटक के सुभाषचंद्र बोस ने दूसरा स्थान प्राप्त किया था।

अब उच्चतर शिक्षा के लिए सुभाष को कटक से कोलकाता भेजा गया। साढ़े सोलह साल के इस तरूण ने वहां आते ही अपना भावी कार्यक्रम तय कर लिया– '' मैं दर्शनशास्त्र का गहन अध्ययन करूंगा, जिससे मैं जीवन की मूलभूत समस्या का समाधान प्राप्त कर सकूं , व्यावहारिक जीवन में जहां तक संभव हो, रामकृष्ण और विवेकानंद के पदचिन्हों पर चलूंगा। और चाहे कुछ भी हो, मैं सांसारिकता की ओर नहीं जाऊंगा। '' वे आगे लिखते हैं– '' यह दृष्टिकोण लेकर मैंने अपने जीवन के अध्याय का श्रीगणेश किया। ''

' समाज – सेवा से उनका तात्पर्य अस्पताल या दातव्य चिकित्सालय स्थापित करना नहीं था, जैसा कि स्वामी

शेष पृष्ठ क्रमांक 2 पर

पृष्ठ क्रं. 1 का शेष भाग

विवेकानंद के शिष्य किया करते थे, बल्कि मुख्यतः शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय पुनर्निमाण था। अतः हमें नव – विवेकानंद टोली कहा जा सकता था। और हमारा मुख्य उद्देश्य था धर्म और राष्ट्रीयता का न केवल सैद्धांतिक रूप में बल्कि वास्तविक जीवन में भी समन्वय।'

जिसे कृपा मिलती है, उसका जीवन ही बदल जाता है। मुझे भी कृपा का आभास मिला है, इसीलिए तो देश के कार्य हेतु जीवन देकर इसे सार्थक कर देना चाहता हूं। तुम्हें यह भी बता दूं कि इन्हीं राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानंद) ने मुझे काशी में यह कहकर वापस लौटा दिया था कि तुझे देश का काम करना हैं।'

क्रांतिकारी नरेन्द्र नारायण चक्रवर्ती ने अपने जीवन का बारह वर्ष से अधिक का काल जेलों में बिताया था। स्वामी ब्रह्मानंद से उन्हें भावी जीवन के बारे में पथ प्रदर्शक मिला था। सुभाष जब सद्गुरू की तलाश में उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए काशीधाम आये थे तभी उनकी भेंट स्वामी विवेकानंद से हुई थी और उन्होंने कहा कि गुरू वह है जो तुम्हारे भूत और भविष्य को जान ले। 3 अक्टूबर, 1914 दक्षिणेश्वर के काली मंदिर का एक चित्र स्मरण हो आता है। कमलासन पर विराजने वाली मां काली खड्ग हाथ में लिए शिव के आसन पर खड़ी उनके आगे एक बालक है।

20 सितम्बर 1915 को वे लिखते हैं– '' शारीरीक स्थिति को देखकर तो विश्वास नहीं होता कि जीवन में मैं कुछ भी कर सकूंगा। विवेकानंद की सभी बातें सत्य हैं। लोहे के समान सुदृढ़ नाड़ियाँ और श्रेष्ठ प्रतिभाशाली मस्तिष्क यदि तुम्हारे पास है तो संपूर्ण विश्व तुम्हारे कदमों में झुकेगा।''

सुभाष बाबू ने कहा – विवेकानंद जी की बहुमुखी प्रतिभा की व्याख्या करना कठिन है। मेरे समय का छात्र समुदाय स्वामी जी की रचनाओं और व्याख्यानों से जैसा प्रभावित होता था वैसे किसी और सें प्रभावित नही होता था।

एक ओर ब्रह्मानंद की बात स्मरण हो जाती है तो दूसरी ओर है पाश्चात्य आदर्श, जो कर्मठता को ही जीवन मानता है। एक ओर मैन और शांतिपूर्ण जीवन जीने वाला एक आत्मदर्शी योगी है, जिसने जगत की साधारणता का अनुभव कर लिया और दूसरी ओर पश्चिम वालों की विशाल प्रयोगशालाएं, उनका विज्ञान दर्शन, उनके द्वारा आाविष्कृत और प्रकट की गयी अद्भुत ज्ञान राशि।

18 जून 1928 को कोलकाता के अल्बर्ट हॉल में अखिल भारतीय बंग समिति द्वारा आयोजित सभा में सुभाष बाबू ने कहा – ''एक के साथ बहुत्व का समन्वय यह बंगाल का वैशिष्ट्य है। वास्तविक सत्य को अस्वीकार करने से काम नही चलेगा। परमहंस रामकृष्ण व स्वामी विवेकानंद ने कहा कि मनुष्य असत्य से सत्य की ओर अग्रसर नही होता, वह उच्च सत्य से उच्चतर सत्य की ओर पहुँचता है। सत्य के किसी से किसी भी अवसर को वह अस्वीकार नही करता। जैसे एक सत्य है वैसे बहुत्व भी सत्य है। एकत्व के साथ बहुत्व का मिलाप यही साधक की साधना है।'' फरवरी 1929 में पावना युवा सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुये उन्होने कहा–''बहुतों की धारणा है कि जन साधारण या तरूण समाज को जगाने के लिये राष्ट्र या समाज संबंधी मतवादों की प्रचार अनिवार्य है।'' प्रत्येक मतवाद के कटट्र भक्तों का मत है कि उनके मतवाद की स्थापना हो जाने पर जगत के सारे दुःख दर्द दूर हो जायेंगे। पर मुझे ऐसा लगता है कि कोई भी मतवाद हमारा तब तक उद्धार नही कर सकता जब तक कि हम स्वयं ही मनुष्योचित चरित्र बल प्राप्त न कर ले। इसलिये स्वामी विवेकानंद जी ने कहा– मनुष्य निर्माण करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। उन्होने अपनी कविता की चार पंक्तियां उद्धत की थी, जिनका भावार्थ है–

'अपार संग्राम ही मॉ काली की पूजा है। सदा पराजय मिले तो भी भयभीत न होना, भले हृदय श्मशान बन जाये और उस पर श्यामा नृत्य करती हो।'

21 जुलाई 1929 को हुबली में छात्र सम्मेलन के भाषण के दौरान मानों संस्मरणात्मक मनोभाव से कहा – पंद्रह वर्ष पूर्व जो आदर्श बंगाल वस्तुतः पूरे देश छात्रों में अनुप्रमाणित किया करता था, वह विवेकानंद का आदर्श था। अध्यात्मिक शक्ति के बल पर शुद्ध–प्रबुद्ध जीवन के प्रति वे कटिबद्ध थे। इसलिये स्वामी विवेकानंद ने कहा– मनुष्य निर्माण करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। पर व्यक्तित्व विकास पर जोर देते हुये स्वामी जी राष्ट्र को बिल्कुल नही भूले थे। कार्य रहित सन्यास या पुरूषार्थहीन भाग्यवाद पर उनकी आस्था नही थी। राजा राममोहन राय के युग में विभिन्न आंदोलनों के जरिये भारत की मुक्ति कामना धीरे–धीरे प्रकट हुई। उन्नीसवी शताब्दी के अंतर्गत स्वाधीनता के अखण्ड रूप का आभास रामकृष्ण विवेकानंद के भीतर झलकता था– 'स्वतंत्रता मिटट्री का गीत है'। यह संदेश स्वामी जी के हृदय से निकला तब उन्होने समग्र देशवासियों को मुग्ध और उन्मत कर दिया। 10 जनवरी,1931 को बेलूर मठ के प्रांगण में गंगा तट पर शाम को आम सभा में मठ से आमंत्रण पाकर कोलकाता के महापौर के रूप में सुभाष बाबू ने कहा–विवेकानंद जी की बहुमुखी प्रतिभा की व्याख्या करना कठिन है। मेरे समय का छात्र समुदाय स्वामी जी की रचनाओं और व्याख्यानों से जैसा प्रभावित होता था वैसा किसी और से प्रभावित नही होता था। वे मानों उन छात्रों

शेष पृष्ठ क्रमांक 4 पर

रविदास जयंती के लिये विशेष लेख –

हिन्दूधर्म के ध्वज वाहक संत रविदास

– डॉ. किशन कछवाहा

भारतीय इतिहास में राजनैतिक पराभव का एक ऐसा काल भी आया, जब धार्मिक आस्था भी खंडित होती जा रही थी, मंदिरों को बुरी तरह से ध्वस्त कर दिया गया था, जनता के बीच दौर्बल्य का बोध पसर रहा था, वह भी शक्तिहीनता के साथ वर्णाश्रित समाज व्यवस्था को छिन्न – भिन्न किया जाकर एक बड़े समूह को शुद्र निरूपित कर उपेक्षित किया जा रहा था।

ऐसे कठिन समय में एक महापुरूष का जन्म हुआ जिसे सन्त रविदास नाम मिला। उनका मानना था कि जिस व्यक्ति का मन स्वच्छ व पवित्र है, उसे गंगा जाकर पवित्र होने की जरूरत नहीं। '' जिसका मन चंगा, उसकी कठौती में गंगा।'' उन्होंने धर्म निरपेक्षता, सर्व धर्म समभाव और मानव के रूप में ईश्वरत्व को मुखरित कर एक विशाल समुदाय को एक सूत्र मे पिरो देने का स्तुत्य कार्य सम्पन्न किया और अपने शिष्यों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया। इसकी विलक्षण प्रभाव हुआ और अपृश्य जनों को समाज में उठ खड़े होने का अवसर मिल सका। उन्होंने अपने पवित्रतम एवं कर्मशील जीवन से एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिखाया कि व्यक्ति को ऊँच – नीच की श्रेणी में नहीं गिनना चाहिए। उसकी गरिमा की कसौटी तो वास्तव में उसका चिन्तन, आयाम और कर्म होता हैं।

सन्त रविदास नें आध यात्मि सन्त की उच्चतम श्रेणी को तो छुआ। वे नहीं रूके – उन्होंने समाज को बदलने का युगान्तकारी संदेश दिया। आगे जाकर वे सामाजिक क्रांति के दूत भी माने गये।

गुरूग्रन्थ साहिब में उनके 40 पद शामिल किया जाना, इसी तथ्य का द्योतक है

कि वे सामाजिक क्रांति के अग्रदूत आध्यात्मिक सन्त थे। आज 600 साल पहले उन्होंने पराधीनता के खिलाफ अपनी वाणी मुखरित की थी –

'' पराधीनता पाप है, जान हूँ सोच मेरे मीत।
' रविदास ' दास पराधीन से कोई न करे प्रीत ।।

गुरू रामानन्द जी महाराज का उन्हें शिष्यत्व प्राप्त हुआ। वे उस समय के उदार विचार वाले मानव प्रेमी सन्त थे।

सन्त रविदास की शिक्षाओं और उनके प्रेरणादायक उपदेशों को समाज में सराहा गया। वे तत्कालीन समाज मे सौम्य, शांत, प्रखर, अड़िग देवीप्यमान आलोक स्तम्भ सिद्ध हुये। वे हिन्दू समाज विशेषकर सनातन धर्म के महान स्तम्भ हैं। उनका जन्म माघी पूर्णिमा के पावन दिन वाराणसी जिले में हुआ था।

वे सामाजिक समरसता के अग्रदूत थे। उन्होंते निरक्षरता , दरिद्रता और अपृश्यता की दीवनों कोभेदते हुये ईश्वर का साक्षात्कार किया। वहीं समाज की बुराईयों पर भी प्रहार किये और समरसता की पावन धारा प्रवाहित की। उन्होंने अहंकारियों को भी सबक सिखाने में कमी नहीं की। वहीं भक्तों को श्रीराम की मनमोहक भक्ति की महिमा का भी ज्ञान प्रदान किया। उनके सम्बन्धा में अनेकानेक चमत्कारिक घटनाओं का भी उल्लेख मिलता है।

उन्होंने अपने उपदेशों मे यह भी स्पष्ट किया कि ईश्वर की प्राप्ति सदाचार, परहित की भावना तथा सदव्यवहार को आचरण में उतार लेने पर ही सम्मव है। उन्होंने श्रम की महत्ता को भी प्रतिपादित किया। '' प्रभु भगति समसाधना, जग मह जिन्हहिं पास तिन्इहिं जीवन सफल भयो सन्त माषै रविदास।''

सन्त रविदास ने हिन्दुओं के साथ – साथ मुसलमानों के कहर और रूढ़िवादी तत्वों की भी खुलकर आलोचना की। उन्होंने नैतिक मूल्यों, सादगीपूर्ण व्यवहार हृदय मे पवित्र रखने की बात पर जोर दिया।उन्होंने ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमे न कोई ऊच हो, न कोई नीच, किसी प्रकार का भेदभाव और रागद्वेष न हो। सभी को बराबर सम्मान मिले।

'' ऐसा चाहूँ राज मैं, जहॉ मिलै सबन को अन्न।
छोट बड़ो सब सम बसे, रविदास रहें प्रसन्न।।

उनकी देह त्याग की तिथि के बारे में निम्न लिखित पंक्तियाँ लोक प्रसिद्ध हैं –

वैसाख चतुर्दशी संवत 1584 को ऊपरांत उन्होंने अपना भौतिक शरीर त्यागा।

'' पन्द्रह सौ असी, चित्तौर भई भीर ।
जर – जर देह कंचन भई, रवि – रवि मिल्यौ शरीर।।''

कहा जाता है सन्त रविदास जी 129 – 130 वर्ष की आयु में गौलोक वासी हुये।

उस महान आत्मा को सादर नमन जिसने अपने प्रेरणादायक उपदेशों से सामाजिक दृष्टि से उपेक्षा के शिकार, आर्थिक दृष्टि से कमजोर और राजनैतिक दृष्टि से तिरस्कृत एवं पीड़ित समाज को सिर उठाकर चलने की शक्ति प्रदान की। उस युगान्तर कारी महापुरूष को स्मरण करें, उनके उपदेशों का अनुसरण करते हुये भेद भावों का जड़मूल से उन्मूलन करें।

पृष्ठ क्रं. 2 का शेष भाग

की आशाओं– आकांक्षाओं को पूर्णरूप से अभिव्यक्त करते थे। 13 जनवरी 1993 को भारत से निर्वासन के बाद विश्व भ्रमण करते हुये उन्होने अपना सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'इण्डिया स्ट्रगल' लिखा, जिसमें वे लिखते है, 'पिछली शताब्दी के आठवे दशक में दो धार्मिक महापुरूषों का उदय हुआ, जिनका देश के नवनिर्माण की धारा पर विशेष प्रभाव पड़ा।

वे थे स्वामी रामकृष्ण व उनके शिष्य विवेकानंद, जो एक सनातनी हिन्दु की तरह पले–बढ़े थे और अपने गुरू से मिलने से पहले नास्तिक थे। अपने स्वर्गवास से पहले गुरू ने अपने शिष्य का भारत और विश्व में हिन्दु धर्म का प्रचार करने का गुरूभार सौप दिया था।'

तदनुसार स्वामी जी रामकृष्ण मठ की स्थापना की। इसके साथ हिन्दु जीवन दर्शन का देश और विदेश में,खासकर अमेरिका में विशुद्ध प्रचार करते रहे। उनके लिये धर्म राष्ट्रवाद का प्रेरक था। विश्वयुद्ध के बाद जब सुभाष बाबू 26 फरवरी 1941 की रात जेल से फरार हो गये तेा गुप्त रूप से अफगानिस्तान, जर्मनी होते हुये अंत में जापान पहुॅच गये। 15 फरवरी 1942 को उन्होने सिंगापुर में विश्व सेना के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। दिसम्बर 1941 में रासबिहारी बोस ने आजाद हिन्द फौज की स्थापना की थी। कैप्टन मोहन सिंह को उसका प्रधान बनाया थां 4 जुलाई 1942 को रासबिहारी बोस ने आजाद हिन्द फौज की बागडोर नेता सुभाष बोस को सौप दी थी।

नेता जी के सिंगापुर प्रवास के दौरान कुछ संस्मरण सिंगापुर रामकृष्ण मठ के प्रमुख स्वामी भास्वरानंद जी ने लिपिबद्ध किये है। स्वामी जी ने लिखा है,उन्होने समुद्र तट पर एक प्रसादनुमा भवन को अपना आवास बनाया। 1943 की विजयादशमी की रात उन्होने सिंगापुर आश्रम की गतिविधियां जानने की कोशिश की। मां शारदा के जन्मदिवस पर मंदिर में ध्यानमग्न होकर बैठे रहे। दुर्गासप्तशती की एक प्रति की इच्छा व्यक्त की। मेरा अपनी चंडी पाठ की पुस्तक उन्हे उपहार में दिये जाने पर उन्होने अतीव आनंद व्यक्त किया।

24 अप्रैल 1945 को रंगून छोड़कर बैकाक के लिये रवाना होने की पूर्व संध्या पर अर्थात 23 अप्रैल की रामकृष्ण मठ में दर्शन के लिये गये थे। स्वामी जी ने कहा था कि भारत की आजादी की लड़ाई जारी रखेंगे।नेता जी ने स्वामी जी के आदेश केा शिरोधार्य कर अन्य सभी देवी–देवताओं की अपेक्षा पूर्णयोग से भारत माता की ही उपासना की। बंगला के सुप्रसिद्ध लेखक श्री मोहित लाल मजूमदार ने स्वामीजी की मानस पुत्र माना है।

बलिदानी लाला लाजपतराय

'' मुझ पर किया प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की एक – एक कील सिद्ध होगा।'' 30 अक्टूबर को साईमन कमीशन लाहौर आया था। इस कमीशन के पूर्ण बहिस्कार आन्दोलन का नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे। सीनियर सुप्रिन्टिन्डेन्ट स्काट और उसके साथी सान्डर्स ने लालाजी को निशाना बनाकर उन पर लाठियों से प्रहार किये। लालाजी ने ललकारते हुये उकृ शब्द कहे थे। लेकिन लालाजी चारपाई से फिर उठ न सके । इसी अवस्था मे उनका 1 नवम्बर को प्रातः काल निधन हो गया।

गुरूदत्त और हँसराज जी के साथ आर्यसमाज के माध्यम से उत्साह पूर्वक सेवाकार्य करते रहे। आपने उस समय अकालग्रस्त क्षेत्रों बुन्देलखंड , (1900), राजस्थान(1907–08), उड़ीसा और मष्य प्रदेश मे दुर्मिक्ष के दौरान सराहनीय कार्य किये। इस दौरान ईसाई प्रचारक जनताकी गरीबी का अनुचित लाभ उठा रहे थे। ऐसे अवसर पर हजारों हिन्दुओं को विधर्मी होने से भी बचाया।

डॉ. किशन कछवाहा

लाला जी ने अपनी स्वर्गीय पत्नी की स्मृति में लाहौर मे गुलाब देबी तपेदिक अस्पताल भी खोला। विभाजन के बाद जालंधर मे इसकी पुनः स्थापना की। सन् 1925 के आरम्य में अछूतो द्वारा आन्दोलन शुरू किये राजनैतिक जागरण पैदा करने अनेक कार्य प्रारंभ किये। उर्दू में ' वन्देमातरम ' और अंग्रेजी में ' पीपुल ' नाम साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी प्रारंभ किया। आपने अनेक पुस्तकें भी लिखी जिनमे ' अनहैपी इंडिया ' का बहुत प्रचार हुआ।

सन् 1920 में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में कॉग्रेस अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार से असहयोग का प्रस्ताव पारित किया गया। बल्लभ भाई पटेल ने उसी दिन से अपनी वकालत का व्यवसाय छोड़ दिया और खादी के वस्त्र पहनने लगे, बच्चों का नाम स्कूलों से कटवा दिया।

लाला जी का जन्म 28 जनवरी सन् 1865 को जिला फीरोजपुर (पंजाब) के ठोड़ी ग्राम में हुआ था। वे कुशाग्र वुद्धि थे। उन्होंने 15 वर्ष आयु में ही मेट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। फिर गवर्नमेन्ट कालेज लाहौर में दाखिला लिया। जहॉ एफ. ए. के साथ कानून की भी पढ़ाई की। वे सन् 1892 तक वकालत करते। बाद मे डी. ए. बी. कालेज मे अध्यायन कार्य करने लगे।

लाला जी लेखक, समाज सुधारक , प्रखरवक्ता, दूरदर्शी तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। देश, धर्म, सम्यता संस्कृति के बारे में उनकी सोच राष्ट्रीय थी। उनके द्वारा लिखी पुस्तक ' छत्रपति शिवाजी ' की भूमिका से बेहतर तरीके के से समझा जा सकता है।

सूचना

कृपया आप ~~अपना ई~~–मेल एवं मोबाइल नम्बर महाकौशल संदेश के ई मेल पर भेजने का कष्ट करें ताकि 'महाकोशल संदेश' आपको ईमेल पर प्रेषित किया जा सके । – सम्पादक

प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ. किशन कछवाहा द्वारा विश्व संवाद केन्द्र, महाकोशल, प्लाट नं–1, म.नं. 1692, नवआदर्श कालोनी, के लिये ओम आफसेट प्रिन्टर्स 239, यूनियन बैंक के सामने बल्देवबाग चौक, जबलपुर द्वारा मुद्रित। प्रकाशन स्थान–विश्व संवाद केन्द्र प्लाट नं 1, म.नं. 1692 नवआदर्श कॉलोनी गढ़ा मार्ग जबलपुर मध्यप्रदेश । संपादक– डॉ. किशन कछवाहा
Email:- vskjbp@gmail.com kishan_kachhwaha@rediffmail.com